Master of Arts (Hindi)

Semester –II

Paper Code –

BHASHA VIGYAN AVAM HINDI BHASHA-II

भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा–II

एम0 ए0 द्वितीय सेमेस्टर
चतुर्थ प्रश्नपत्र : भाषा विज्ञान एवं हिन्दी भाषा– II

Hard Core **Paper code:**

समय : 3 घण्टे

पूर्णांक : 100 अंक
आंतरिक मूल्यांकन : 20 अंक
लिखित : 80 अंक

Course Outcomes

CO 1. भाषा एवं भाषा विज्ञान की परिभाषा एवं स्वरूप की सैद्धांतिक जानकारी

CO 2. स्वनविज्ञान की परिभाषा एवं स्वरूप तथा वाक् उत्पादन प्रक्रिया का ज्ञान

CO 3. रूपविज्ञान, वाक्य एवं अर्थ विज्ञान की सैद्धांतिक जानकारी

CO 4. हिंदी भाषा का इतिहास एवं विकास क्रम का ज्ञान कराना

CO 5. लिपि विज्ञान की सैद्धांतिक जानकारी देते हुए हिंदी प्रचार–प्रसार में व्यक्तियों तथा संस्थाओं के योगदान की जानकारी।

1. **हिंदी भाषा का इतिहास**

   प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ – वैदिक एवं लौकिक संस्कृत

   मध्ययुगीन भारतीय आर्य भाषाएँ : परिचय

   संस्थाओं के योगदान की जानकारी

2. **हिंदी का विकासात्मक स्वरूप**

   हिंदी की उप भाषाएँ :

   पूर्वी हिंदी और उनकी बोलियाँ

   पश्चिमी हिंदी और उनकी बोलियाँ

   मानक हिंदी का स्वरूप

   काव्य – भाषा के रूप में अवधी का विकास

   काव्य – भाषा के रूप में ब्रज का विकास

   साहित्यिक हिंदी के रूप में खड़ी बोली का विकास

   हिंदी की संवैधानिक स्थिति

3. **हिंदी का भाषिक स्वरूप**

   स्वनिम व्यवस्था : स्वर–परिभाषा और वर्गीकरण

   व्यंजन– परिभाषा और वर्गीकरण

   हिंदी शब्द संरचना : उपसर्ग, प्रत्यय, समस्तपद

हिंदी व्याकरणिक कोटियाँ : वचन, पुरुष, कारक और काल की व्यवस्था संदर्भ में हिंदी संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया रूप

हिंदी वाक्य रचना

हिंदी के विविध रूप, बोली, भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा,

माध्यम भाषा, संचार भाषा

4. नागरी लिपि और हिंदी प्रचार–प्रसार

हिंदी : प्रचार–प्रसार प्रमुख व्यक्तियों का योगदान

नागरी लिपि की वैज्ञानिकता

नागरी लिपि का मानकीकरण

5. **हिंदी कंप्यूटिंग**

कंप्यूटर परिचय एवं महत्त्व

वर्तनी–शोधन

सहायक ग्रंथ

विषयसूची

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	हिंदी भाषा का इतिहास	1
2.	हिंदी का विकासात्मक स्वरूप	21
3.	हिंदी का भाषिक स्वरूप	51
4.	नागरी लिपि और हिंदी प्रचार–प्रसार	75
5.	हिंदी कंप्यूटिंग	93

अध्याय 1

हिंदी भाषा का इतिहास

भारतीय आर्य भाषाएँ

भारतीय आर्यभाषा का महत्त्व संसार की सभी भाषाओं में सार्वाधिक है। ये भाषाएँ समृद्ध साहित्य व्याकरण के सम्मत रूप और प्रयोग पर अपनी पहचान के साथ सामने आई हैं।

भारतीय आर्यभाषा का विभाजन

भारतीय आर्यभाषा की पूरी शृंखला को 3 भागों में विभाजित किया जाता है।

(क) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ (प्रा0 भा0 आ0) –1500 ई0 पू0 से 500 ई0 पू0 तक।

(ख) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ (म0 भा0 आ0) –500 ई0 से 1000 ई0 पू0 तक।

(ग) आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ (आ0 भा0 आ0) –1000 ई0 सन् से अब तक।

(क) प्राचीन भारतीय आर्यभाषाएँ :

इनका समय 1500 ई. पू0 तक माना जाता है। वस्तुतः यह विवादास्पद विषय है। इस वर्ग में भाषा के दो रूप उपलब्ध होते हैं (i) वैदिक या वैदिक संस्कृत, (ii) संस्कृत या लौकिक संस्कृत। इन दोनों का भी पृथक–पृथक परिचय अपेक्षित है।

(i) वैदिक या वैदिक संस्कृत – इसे 'वैदिक भाषा', वैदिकी', छान्द या 'प्राचीन संस्कृत' भी कहा जाता है। वैदिक भाषा का प्राचीनतम रूप ऋग्वेद में सुरक्षित है। यद्यपि अन्य तीनों संहिताओं, ब्राह्मणों–ग्रंथों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि की भाषा भी वैदिक ही है, किंतु इन सभी में भाषा का एक ही रूप नहीं मिलता। 'ऋग्वेद' के दूसरे मण्डल से नौवें मण्डल तक की भाषा ही सर्वाधिक प्राचीन है। यह 'अवेस्ता' के अत्यधिक निकट है। शेष संहिताओं तथा अन्य ग्रन्थों में भाषा ही प्राचीनतम है, जिनमें आर्यों का वातावरण तत्कालीन पंजाब के वातावरण से मिलता–जुलता वर्णित है। इसी प्रकार वैदिक भाषा के दो अन्य रूप दूसरा और तीसरा भी वैदिक साहित्य में मिलते हैं। दूसरे रूप मध्यदेशीय भारत का तथा तीसरे रूप पूर्वी भारत का प्रभाव लक्षित होता है। ज्ञात होता है कि वैदिक भाषा का प्रवाह अनेक शताब्दियों तक रहा होगा।

विद्वानों का विचार है कि वैदिक भाषा का जो रूप हमें आज वैदिक साहित्य, विशेषतः ऋग्वेद में मिलता है, वह तत्कालीन साहित्यक भाषा ही थी, बोलचाल की भाषा नहीं। तत्कालीन बोलचाल की भाषा को जानने का कोई साधन आज हमें उपलब्ध नहीं है। हाँ, साहित्यक वैदिक के आधार पर हम उसका कुछ अनुमान अवश्य ही कर सकते हैं।

वैदिक भाषा की ध्वनियाँ

वैदिक भाषा की ध्वनियाँ मूलभारोपीय ध्वनियों से कई बातों से भिन्न हैं–

1. मूलभारोपीय तीन मूलहस्व स्वर– अ, ऐ, ओं के स्थान पर वैदिक में केवल एक 'अ' ही मूल ह्रस्व स्वर शेष है।

2. मूलभारोपीय तीन मूल दीर्घ स्वरों–आ, ऍ, ओ के स्थान पर वैदिक में केवल एक 'आ' ही मूल दीर्घ शेष है।

हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1. मूलरूपों में प्राप्त न् म् अन्तस्थ ध्वनियों का वैदिक में लोप हो गया है।
2. मूलभारोपीय में तीन प्रकार की कवर्ग ध्वनियाँ थीं, किन्तु वैदिक में एक ही प्रकार की कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्) ध्वनियाँ हैं।
3. मूलभारोपीय में कवर्ग तथा टवर्ग का नितांत अभाव था, जबकि वैदिक ध्वनियों में ये दो वर्ग आ मिले जिसका कारण द्रविड़ भाषा का प्रभाव है।
4. मूलभारोपीय में एक ही 'स्' (न्नष्म) ध्वनि थी। वैदिक में इसके साथ श् तथा ष् ये दो (न्नष्म) ध्वनियाँ और आ जुड़ी हैं।

वैदिक ध्वनि–समूह

मूलस्वर	–	अ, आ, इ, ई, उ, न्न्, ऋ, ॠ, ऌ, ए आ	= 11
संयुक्त स्वर	–	ऐ, (अई), और (अउ)	= 2
कण्ट	–	क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, (कवर्ग)	= 5
तालव्य	–	च्, छ्, ज्, झ्, ञ् (चवर्ग)	= 5
मूर्धन्य	–	ट्, ठ्, ड्, ल्, ढ्, ल्ह्, ण्, (टवर्ग)	= 7
दन्त	–	त्, थ्, द्, ध्, न्, (तवर्ग)	= 5
ओष्ठय	–	प्, फ्, ब्, भ्, म्, (पवर्ग)	= 5
दन्तोष्ठय	–	व्	= 1
अतस्य	–	य्, र्, ल्, व्	= 4
शुद्ध अनुनासिक –अनुस्वार (.)			= 1
संघर्षी – श्, ष्, स्, ह्, (क्, ख्, से पूर्व अर्द्धविसर्गसदृश)			
जिह्वामुलीय, (प्, फ्, से पूर्व अर्द्धविसर्ग सदृश) उपध्मानीय			= 6
		कुल	= 52

वैदिक भाषा की विशेषताएँ

प्रत्येक भाषा का अपना विशिष्ट स्वरूप होता है। प्रत्येक भाषा अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण अपना पृथक् अस्तित्व रखती है। किसी भाषा की ऐसी विशेषताएँ ही उसे अन्य भाषाओं से पृथक् करती हैं। इस दृष्टि से वैदिक भाषा की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ यहाँ प्रस्तुत हैं :–

1. वैदिक भाषा में स्वरों के ह्रस्व और दीर्घ उच्चारण के साथ ही उनका प्लुत उच्चारण भी होता है; जैसे, आसी त्, विन्दती इतयादि।

2. वैदिक भाषा में 'ऌ' स्वर का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है।
3. वैदिक भाषा में संगीतात्मक स्वरघात का बहुत महत्व है। इसमें तीन प्रकार के स्वर हैं– उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। वैदिक मंत्रों के उच्चारण में इनका ध्यान रखना अनिवार्य होता है। स्वर–परिवर्तन से शब्दों के अर्थों में भी परिवत्रन हो जाता है। 'इन्द्रशत्रुः इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भी वैदिक भाषा की स्वराघात प्रधानता का बहुत महत्व है।
4. वैदिक भाषा की व्यद्रजन ध्वनियों में ल् के और लह् दो ऐसी ध्वनियाँ हैं, जो उसे अन्य भाषा से पृथक् करती है; जैसे 'इला', 'अग्निमीले' आदि में।
5. प्राचीन वैदकि भाषा में 'ल्' के स्थान पर प्रायः 'र्' का व्यवहार मिलता है; जेसे– 'सलिल' के स्थान पर 'सरिर'।
6. वैदिक भाषा में सन्धि–नियमों में पर्याप्त शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। अनेक बार सन्धि–योग्य स्थलों पर भी सन्धि नहीं होतती और दो स्वर साथ–साथ प्रयुक्त हो जाते हैं; जैसे– 'तितउ' (अ, उ) 'गोओपाशा' (ओ, औ)
7. वैदिक भाषा में शब्द रूपों में पर्याप्त अनेकरूपता मिलती है। उदाहरण के लिए प्रथमा विभिक्ति, द्विवचन, 'देवा' और 'देवौ', प्रथमा विभिक्ति बहुवचन में 'जनाः' और जनासः तृतीय विभक्ति बहुवचन में 'देवैः और 'देवेभिः' दो–दो रूप मिलते हैं। यह विविधता अन्य रूपों में भी मिलती है।
8. यही विविधता धातुरूपों में भी उपलब्ध हैं एक ही 'कृ' धातु के लट्–लकार, प्रथम पुरुष में 'कृणुते', 'करोति', 'कुरुते', 'करति' आदि अनेक रूप मिलते हैं।
9. धातुओं से एक ही अर्थ में अनेक प्रत्यय लगते हैं। जैसे–' एक ही 'तुमुन्' प्रत्यय के अर्थ में 'तुमुन्', 'से', 'सेन', 'असे', 'असेन्', 'कसे', 'कसेन्', 'अध्यै', 'अध्यैन्', 'कध्यैन्, 'शध्यैन्', 'तवै', 'तवैड्', और 'तवैड्', और 'तवेन्' ये 16 प्रत्यय मिलते हैं।
10. वैदिक भाषा में उपसर्गों का प्रयोग स्वतंत्र रूप से होता था। उदाहरणार्थ अभित्वा पूर्वपीतये सृजामि'', (ऋग्वेद यहाँ 'अभि' उपसर्ग का प्रयोग 'सृजामि' क्रियापद से पृथक् स्वतंत्र रूप से हुआ है। इसी प्रकार '''मानुषान्–अभि'' (ऋ 'अभि' स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त है।)
11. पदरचना की दृष्टि से वैदिक भाषा श्लिष्टयोगात्मक हैं सम्बनधतत्व (प्रत्यय) के जुड़ने पर यहाँ अर्थतत्व (प्रकृति) में कुछ परिवर्तन तो हो जाता है, किन्तु अर्थतत्व तथा संबंधतत्त्व को पृथक्–पृथक् पहचाना जा सकता है। जैसे–'गृहाणाम्', यहाँ 'गृह' प्रकृति तथा 'नाम्' प्रत्यय स्पष्ट रूप से पहचाने जाते हैं।

संक्षेप में वैदिक भाषा में प्रयोगों की अनेकरूपता को देखने से प्रतीत होता है कि आज वैदिक भाषा का तथा काल–भिन्नता, दोनों का ही होना संभव है। संभवतः उस काल की जनसामान्य की विविध बोलियों का ही, हिन्दी में खड़ी बोली के समान, एक परिनिष्ठित साहित्यिक रूप वह वैदिक भाषा है, जो हमें आज 'ऋग्वेद' आदि में उपलब्ध होती है।

संस्कृत भाषा

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का दूसरा रूप 'संस्कृत' है। इसी को 'लौकिक संस्कृत' या 'क्लासिकल संस्कृत' भी कहा जाता है। यूरोप में जो स्थान 'लैटिन' भाषा का है, वही स्थान भारत में संस्कृत का है। भारत में 'रामायण' 'महाभारत' से भी पहले से लेकर आज तक संस्कृत में साहित्य रचना हो रही है। गुप्तकाल में संस्कृत की सर्वाधिक

उन्नति हुई थी। इसका साहित्य विश्व के समृद्धतम साहित्यों में से एक है। 'वाल्मीकि', 'व्यास', 'कालिदास', आदि इसकी महान् विभूतियाँ हैं। विश्व–विख्यात महाकवि कालीदास का 'अभिज्ञान–शाकुन्तलम्' नाटक संस्कृत भाषा श्रृंगार है। विश्व की अनेक भाषाओं में संस्कृत के अनेक ग्रंथों का अनुवाद हुआ है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत का महत्व बहुत अधिक है। संस्कृत के अध्ययन के कारण ही यूरोप में आधुनिक युग में 'तुलनात्मक भाषा विज्ञान' का प्रारंभ हुआ।

संस्कृत का विकास उत्तरी भारत में बोली जाने वाली वैदिककालीन भाषा से माना जाता है, यद्यपि भारत के मध्य भाग तथा पूर्वी भाग की बोलचाल की भाषाओं का प्रभाव भी उस पर रहा होगा। लगभग 8 शताब्दी ई0 पूर्व में इसका प्रयोग साहित्य में होने लगा था। यह वह अवस्था है, जब संस्कृत की आधारभूत भाषा का प्रयोग बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा दोनों के रूप में हो रहा था। अनुमान किया जाता है कि लगभग ई0 पू0 5वीं शताब्दी या कुछ क्षेत्रों में उसके बाद तक संस्कृत की आधारभूत यह भाषा बोली जाती थी और तब तक उत्तर भारत में कई अन्य ऐसी बोलियाँ भी जन्म ले चुकी थी, जिनसे आगे चलकर अनेक प्राकृतों, अपभ्रंश तथा आधुनिक आर्यभाषाओं का विकास हुआ है।

लगभग ई0 पू0 5वीं शताब्दी या 7 वीं शताब्दी में 'पाणिनी' ने संस्कृत की उस आधारभूत भाषा को व्याकरण के नियमों से बद्ध करके एकरूपता प्रदान की और यह भाषा 'संस्कृत' कहलाने लगी। अर्थात् अपने स्वाभाविक विकास के कारण, नियंत्रण के हिंदी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अभाव में जो भाषा प्राकृत (विकृत) रूप में चल रही थी, वह तब 'संस्कृत' हो गयी। उसका संस्कार कर दिया गया, उसे शुद्ध रूप प्रदान कर दिया गया।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस काल में 'संस्कृत' साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण कर रही थी, उस समय भारत में स्वयं साहित्यिक संस्कृत की आधारभूत बोली तथा उससे मिलती–जुलती कई अन्य बोलियाँ भी व्यवहार में थी, किंतु उन सबमें 'संस्कृत' ही शिष्ट, साहित्यिक या राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी।

संस्कृत ध्वनियाँ

वैदिक भाषा में 52 ध्वनियाँ थी, संस्कृत में ध्वनियों की संख्या केवल 8 हैं। अर्थात् वैदिक भाषा की ध्वनियाँ ल्, लृह्, जिह्वामलीय तथा उपध्मानीय–संस्कृत में नहीं मिलती हैं। इसके साथ ही अनेक ध्वनियों में परिवर्तन भी मिलता है। उदाहरण के लिए (1) वैदिक में 'ऋ' और 'लृ' का उच्चारण स्वर ध्वनियों के रूप में था, किन्तु संस्कृत में इनकी स्वरता नष्ट हो गई ओर इनका उच्चारण 'र' और 'ल्' व्यद्रजनों जैसा होने लगा। (2) दन्तोष्ठय 'व्' का उच्चारण भी अन्तस्थ 'व्' जैसा ही हो गया है। (3) वैदिक भाषा की शुद्ध 'अनुस्वार (.) ध्वनि भी संस्कृत में अनुनासिक हो गई है। (4) 'ऐ' तथा 'औ' का उच्चारण संयुक्त स्वरों जेसा न होकर मूलस्वरों जैसा होने लगा।

संस्कृत भाषा की विशेषताएँ

संस्कृत लौकिक संस्कृत वा क्लासिकल संस्कृत की सबसे प्रमुख विशेषता पाणिनिकृत नियमबद्धता है। संस्कृत की विशेषता ही उसे वैदिक से पृथक् करती है। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, वैदिक भाषा में शब्दरूपों तथा क्रिया–रूपों की विविधता है, सन्धि–नियमों आदि में भी पर्याप्त शिथिलता हैं एक ही अर्थ में विभिन्न प्रत्ययों का प्रयोग है, आदि–आदि। इन सबके साथ ही वैदिक भाषा में अपवादों की संख्या भी बहुत अधिक है तथा भाषा में स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है।

इसके विपरीत, संस्कृत या लौकिक संस्कृत बहुत ही नियमबद्ध तथा नियन्त्रित है। उसकी विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है –

1. वैदिक भाषा में प्रयुक्त ल्, ल्ह्, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ध्वनियों का संस्कृत में लोप हो गया है।

2. पाणिनिकृत नियमों (अध्टाध्यायी–सूत्रों) के द्वारा उसमें शब्द–रूपों तथा क्रियारूपों में एकरूपता आ गयी है।
3. 'लट्' लकार का प्रयोग समाप्त हो गया है।
4. एक ही अर्थ में प्रयुक्त अनेक प्रत्ययों के स्थान पर केवल एक ही प्रत्यय का प्रयोग रूढ़ हो गया; जैसे 'तुमुन''कत्वा' आदि।
5. अनेक वैदिक शब्दों का प्रयोग बन्द हो गया; जैसे–'दर्शत्' (=सुन्दर), 'दृशीक' (=सुन्दर), 'रपस्' (=चोट, दुर्बलता, रोग), 'अमूर' (= बुद्धिमान), 'मूर' (=मूढ़) 'ऋदूदर' (= दयालु), 'अक्तु' (= रात्रि), 'अमीवा' (= व्याधि) आदि।
6. अनेक वैदिक शब्दों का प्रयोग संस्कृत में भिन्न अर्थों में होने लगा; जैसे–

	शब्द		वैदिक–अर्थ		संस्कृत–अर्थ
1.	अराति	=	शत्रुता	=	शत्रु
2.	अरि	=	ईश्वर, धार्मिक शत्रु	=	केवल शत्रु
3.	न	=	उपमावाचक (जैसा), निषेधवाचक (नहीं)	=	निषेधवाचक (नहीं)
4.	मृलीक	=	कृपा	=	शिव का एक नाम
5.	क्षिति	=	गृह, निवासस्थान बस्ती, मनुष्य	=	पृथ्वी
6.	वध	=	भयंकर शस्त्र	=	हत्या करना आदि आदि।

7. सन्धि–कार्य अनिवार्य–सा हो गया।
8. उपसर्गों का स्वतंत्र प्रयोग बन्द हो गया।
9. स्वरों में 'लृ' प्रायः लुप्त–सा हो गया। स्वरों का उदत्त–अनुदत्त और स्वरित उच्चारण समाप्त हो गया।
10. स्वरभक्ति अप्रचलित हो गई।

इस प्रकार वैदिक भाषा की अपेक्षा संस्कृत भाषा अधिक नियमित एवं व्यवस्थित हो गई तथा वैदिक भाषा की अपेक्षा संस्कृत के रूप में पर्याप्त परिवर्तन हो गया। इस परिवर्तन को जानने के लिए यहाँ दोनों की तुलना प्रस्तुत करना आवश्यक है।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाएँ

लौकिक संस्कृत एक तरफ व्याकरण का आधार पाकर अपने निश्चित रूप में स्थिर हो गई, तो दूसरी तरफ लोक–भाषा तेजी से विकसित हो रही थी। इसी विकास के परिणामस्वरूप प्राकृत भाषा का विकास–काल ई0 पू0 500 से 1000 ई0 माना जाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के तीन रूप स्पष्ट दिखाई देते हैं।

(क) पाली : यह प्राकृत का प्रारम्भिक रूप है जिसका समय 500 ई0 पूर्व के प्रथम शताब्दी के प्रारंभ तक माना गया है। इसकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि संस्कृत की उत्पत्ति प्राकृत से हुई है। एक अन्य मत के अनुसार संस्कृत के समानान्तर, लोकभाषा से इसका उद्भव

हुआ हैं इसमें प्रथम मन्तव्य अधिक उपयुक्त लगता है।

पाली–व्युत्पत्तिः इसकी व्युत्पति के विषय में विभिन्न विद्वानों द्वारा अपने ढंग से विचार प्रस्तुत किए गए हैं –

1. भिक्षु सिद्धार्थ के अनुसार पाठ > पालि।
2. भिक्षु जगदीश काश्यप के अनुसार परियाय (बुद्धउपदेश) > पलियाय > पालि
3. आचार्य विधु शेखर के अनुसार पंक्ति > पंति > पंति > पल्लि > पालि।
4. डॉ0 मेक्स वेलसन के अनुसार पाटिल (पटना) > (पटना) > पाडलि > पालि।

विशेषताएँ

1. इसमें से ऋ, लृ, ऐ, औ, श, ष, तथा विसर्ग आदि वैदिक ध्वनियाँ लुप्त हो गई हैं।
2. पालि में प्रायः संस्कृत की ए ध्वनि ऐ और ओ ध्वनि औ हो गई है; यथा–कैलाष > केलाश, गौतम > गोतम।
3. इसमें विसर्ग सन्धि नहीं है।
4. पाली में तीनों लिंग हैं।
5. द्विवचन की व्यवस्था नहीं है।
6. इसमें बलाघात का प्रयोग होता है।
7. पाली में परम्परागत तद्भव शब्दों की बहुलता है।

(ख) प्राकृत : इसे द्वितीय प्राकृत और साहित्यिक प्राकृत भी कहते हैं। इसका काल प्रथम शताब्दी से 5वीं शताब्दी तक है। विभिन्न क्षेत्रों में इसके भिन्न–भिन्न रूप विकसित हो गये थे।

1. मागधी : इसका विकास मगध के निकटवर्ती क्षेत्र में हुआ। इसमें कोई साहित्यिक कृति उपलब्ध नहीं है।

विशेषताएँ :

1. इसमें स का – रूप हो जाता है; यथा–सप्त > –त्त, पुरू– > पुलिस।

हिन्दी भाषा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2. इसमें र का ल हो जाता है; यथा– पुरुष > पुलिश
3. ज के स्थान पर य हो जाता है, यथा– जानाति > याणदि।

2. अर्ध–मागधीः यह मागधी तथा शौरसेनी के मध्य बोली जाने वाली भाषा थी। यह जैन साहित्य की भाषा थी। भगवान महावीर के उपदेश इसी में है।

विशेषताएँ

1. इसमें श, ष, स के लिए केवल स का प्रयोग होता है; यथा– श्रावक > सावग।
2. इसमें दन्त्य ध्वनियाँ मँर्धन्य हो जाती है; स्थिर > ठिय।
3. स्पर्श ध्वनि के लोप पर य श्रुति मिलती है; यथा– सागर > सायर, गगन > गयन
4. महाराष्ट्री : इसका मँल स्थान महाराष्ट है। इसमें प्रचुर साहित्य मिलता है। गाह्य सत्तसई (गाथा सप्तशती), गडवहो (गौडवधः) आदि काव्य ग्रंथ इसी भाषा में है।

विशेषताएँ :

1. स्वर बाहुल्य और संगीतात्मकता है।
2. श, ष, स, का ह हो जाता है; यथा – दश > दह, दिवस > दिवह।
3. दो स्वरों के मध्य व्यंजन लोप हो जाता है; यथा – रिपु > रिन्न, नुपँर > णेउर।
4. क्ष का च्छ हो जाता है; यथा– इक्षु > इच्छु।
5. कुछ महाप्राण ध्वनियाँ ह में परिवर्तित हो जाती है; यथा– शाखा > शाहा, अथ > अह।

पैशाची : इसका क्षेत्र कश्मीर माना गया है। ग्रियर्सन ने इसे दरद से प्रभावित माना है। साहित्यिक रचना की दृष्टि से यह भाषा शून्य है।

विषेशताएँ

1. सघोष ध्वनियाँ अघोष हो जाती हैं; यथा– नगर > नकर।
2. र और ल का विपयर्य हो जाता है; यथा– कुमार > कुमाल, रूधिर > लुधिर।
3. ष का स या श हो जाता है; यथा– तिष्ठति > तिश्तदि, विषम > विसम।
4. शौरसेनी : यह मध्य की भाषा थी। इसका केन्द्र मथुरा था। नाटकों में स्त्री–पात्रों के संवाद इसी भाषा में होते थे। दिगम्बर जैन से सम्बंधित धर्मग्रंथ इसी में रचे गए हैं।

विशेषताएँ

1. इसमें क्ष का क्ख हो जाता है; यथा – चक्षु > चक्खु।
2. इसमें न ध्वनि ण हो जाती है; यथा – नाथ > णाथ।
3. इसमें आत्मनेपद लगभग समाप्त है, केवल परस्मैपद मिलता है।

(ग) अपभ्रंश : इसका शाब्दिक अर्थ है– विकृत या भ्रष्ट। इसका प्राचीनतम रूप भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अंक में अपभ्रंश के कुछ पद मिलते हैं। अपभ्रंश में अनेक महत्वपूर्ण रचनाएँ हुई हैं; यथा– विद्यापति कृत कीर्तिलता, अद्दहमाण कृत संदेश–रासक आदि। इसका समय 500 ई0 से 1000 ई0 तक माना जाता है, किन्तु इसमें कुछ एक रचनाएँ 14वीं और 15वीं शताब्दी तक होती रही हैं।

विशेषताएँ

1. ऋ ध्वनि लेखन में थी, उच्चारण में लुप्त हो चुकी थी।
2. श, ष के स्थान पर प्रायः स का प्रयोग होता है।
3. इसमें उ ध्वनि की बहुलता है; यथा– जगु, > एक्कु, कारणु आदि।
4. म के स्थान पर वँ ध्वनि होती है; यथा– कमल > कँवल।
5. क्ष का क्ख हो जाता है; यथा– पक्षी > पक्खी।
6. य ध्वनि ज हो जाती है; यथा – यमुना > जमुना, युगल > जुगल।
7. नपुंसक लिंग और द्विवचन लुप्त हो चुके हैं।
8. इसमें तद्भव शब्दों की बहुलता मिलती है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं का परिचय

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का उद्‌भव 1000 ई0 के लगभग हुआ है। इस वर्ग की भाषाओं का काल तब से अब तक माना गया है। इस काल में प्रयुक्त भाषाओं की गणना आधुनिक भारत आर्यभाषाओं में की जाती है। इस वर्ग की भाषाओं के विकास के कुछ समय पश्चात् से संबंधित साहित्य प्राप्त होता है। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों में हुआ है। इसलिए इन दोनों वर्गों की भाषाओं में पर्याप्त समता है और अनेक भिन्न विशेषताओं का भी विकास हुआ है। इस वर्ग की भाषाओं की कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जिनके आधार पर इन्हें अन्य वर्ग की भाषाओं से अलग कर सकते हैं।

विशेषताएँ

भाषाई इकाइयों के स्तर पर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की विशेषताओं को निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

ध्वनि संबंधी विशेषताएँ

पूर्वकालिक भाषाओं की ध्वनियों के आधार पर इस काल की भाषा की ध्वनियों में कुछ प्रमुख विकास इस प्रकार हुए हैं –

1. ''ऋ'' का लिखित रूप में प्रयोग होता है, किन्तु उच्चारण स्वर के रूप में न होकर ''रि'' के रूप में होता है। 'ऋ' का लिखित रूप में प्रयोग प्रायः तत्सम शब्दों में होता है; यथा– ऋषि, ऋतु आदि।
2. ऊष्म व्यंजन ध्वनियों–श, ष, स का लिखित रूप में पूर्ववत् प्रयोग होता है, किंतु उच्चारण में 'श' और 'स' दो ही ध्वनियाँ हैं। 'ष' ध्वनि का उच्चारण अब लगभग 'श' के ही समान होता है; यथा– कोष > 'कोश, ऋषि > 'रिशि, दोष > दोश। वर्तमान समय में कोष के स्थान पर 'कोश' शब्द का लिखित रूप भी प्रचलित हो गया है।
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में 'ड', 'ढ' के साथ 'ड़' और 'ढ़' मूर्धन्य ध्वनियों का विकास हो गया हैं इसके प्रयोग द्रष्टव्य हैं– सड़क, तड़क, पढ़ना, गढ़ना आदि। इन ध्वनियों के लिखित तथा उच्चारित रूपों का स्पष्ट प्रयोग होता है।
4. 'ज्ञ' संयुक्ताक्षर का शुद्ध उच्चारण 'ज्ञ' है, किंतु आज इसके उच्चारण बदलकर ग्य, ग्यँ, ज्यँ रूप हो गए हैं; यथा– ज्ञान > ग्याँन, ज्ञापन > ग्याँपन, ज्याँपन। इनमें 'ग्य' तथा ग्यँ के तो पर्याप्त प्रयोग मिलते हैं, जबकि ज्यँ का अत्यंत सीमित प्रयोग होता है।
5. विदेशी भाषाओं के प्रभाव के परिणामस्वरूप आधुनिक भारतीय भाषाओं में कुछ विदेशी ध्वनियों को स्थान मिल गया है। मुस्लिम प्रभाव वाली भाषाओं की क, ख, ग़, ज़, फ़् आदि ध्वनियाँ आ गई हैं, तो अंग्रेजी की आँ ध्वनि को भी स्थान मिल गया है।
6. शब्दों के अन्त का 'अ' स्वर प्रायः लुप्त हो जाने से उनकी स्थिति व्यंजनांत हो जाती है; यथा– आज > 'आज्, नाम > नाम्, तन > तन् आदि।
7. शब्दों के मध्य का 'अ' स्वर भी लुप्त होने लग गया है; यथा– किसका > किस्का, उसका > उस्का, उतना > उत्ना आदि।
8. संयुक्त व्यंजनो में क्षतिपूरक दीर्घाकरण नियम के अनुसार एक व्यंजन का लोप होता है और पूर्व ऊरव स्वर का दीर्घीकरण हो जाता है; यथा– कर्म > कम्म > काम, सप्त > सत्त > सात आदि।

(ख) शब्द संबंधी विशेषताएँ

1. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में शब्द वर्ग मुख्यतः तत्सम, तद्भव तथा देशज थे, किंतु आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में विदेशी शब्द–वर्ग विशेष रूप से उभर कर सामने आया है। इस वर्ग में अरबी, फारसी, तुर्की तथा अंग्रेजी के शब्द मुख्य हैं। इन सभी भाषाओं के शब्द तत्सम तथा तद्भव दोनों रूपों में प्रयुक्त होते हैं; यथा –

   तत्सम शब्द–अगर, इमाम, डॅक्टर, टाइम, टी.वी. आदि।

   तद्भव शब्द –कर्ज, जादा, रेल, लालटेन, कप्तान आदि।

2. आधुनिक युग में मध्ययुग की अपेक्षा तत्सम शब्दों का प्रयोग कहीं अधिक होता है। मध्ययुग में तद्भव शब्दों की संख्या आज की अपेक्षा कहीं अधिक थी। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में तत्सम शब्दों का प्रयोग दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

3. आधुनिक युग में अनुकरणात्मक शब्दों के ध्वन्यात्मक तथा प्रति–ध्वन्यात्मक आदि वर्गों के शब्दों का प्रयोग पहले की अपेक्षा कहीं अधिक होने लगा है। आजकल इस वर्ग के शब्दों के बहुल प्रयोग होने के कारण एक–एक शब्द के लिए दो या दो से अधिक प्रतिध्वन्यात्मक शग्दों का प्रचलन हो गया है; यथा– चाय–शाय/वाय/चूय आदि।

4. इस वर्ग की भाषाओं में परिभाषिक शब्द पर्याप्त संख्या में प्रयुक्त हुए हैं; यथा–अनहद, हठयोग, तदर्थ आदि।

5. आधुनिक युग में एक साथ अनेक भाषाओं का प्रयोग होने लगा है इसलिए इसमें संकर शब्दों के प्रयोग यत्र–तत्र मिल जाते हैं; यथा – रेलगाड़ी, बेकाम, कर्जदार आदि।

(ग) व्याकरण संबंधी विशेषताएँ

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के व्याकरण संबंधी तथ्यों में भी पर्याप्त भिन्नता आ गई है। इस संदर्भ की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (संस्कृत) तथा मध्ययुगीन आर्य भाषाएँ नाम तथा धातु दोनों ही दृष्टियों से संयोगात्मक थीं, जबकि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ वियोगात्मक हो गई हैं। पूर्व की भाषाओं की संयोगावस्था तथा वर्तमान की वियोगात्मक की परसर्गों के नामरूपों के साथ प्रयोग तथा सहायक क्रियाओं के धातु रूपों के साथ प्रयोग में देख सकते हैं; यथा –

प्राचीन भा, आ. भाषा (संस्कृत)	आधुनिक भा. आ. भा. (हिंदी)
रामः रावणाय अलम्	राम रावण के लिए पर्याप्त है।
रमेशः विद्यालयं गच्छति	रमेश विद्यालय जाता है।
त्व, आगच्छ।	तुम जाओ/आ जाओ।

2. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (संस्कृत) में स्त्रीलिंग, पुल्लिंग तथा नपुंसक तीनों लिंगों का प्रयोग होता था। अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओं में स्त्रीलिंग तथा पुल्लिंग का ही प्रयोग मिलता है। तीन लिंगों का प्रयोग अब मात्र गुजराती तथा मराठी में मिलता है। लिंग–प्रयोग के संदर्भ में बंगला, उड़िया, असमी, बिहारी में सिमटती हुई लिंग–भेद स्थिति रेखांकन योग्य है।

3. संस्कृत में तीन वचनों का प्रयोग होता था, जो आज भी संस्कृत में प्रयुक्त होता है। भाषा–विकास में

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में द्विवचन का प्रयोग समाप्त हो गया है। अब दो वचनों–एक वचन और बहुवचन के ही रूप रह गए हैं; यथा– बालक > लड़का; बालकौ, बालकाः > लड़के। वर्तमान समय की कुछ भाषाओं में एकवचन तथा बहुवचन शब्दों के लिए एक ही रूप का प्रयोग शुरू हो गया है। हिंदी की कुछ बोलियों में ''मैं'' के लिए भी 'हम' शब्द एकवचन तथा बहुवचन दोनों रूपों में प्रयुक्त होता है। बहुवचन को स्पष्ट करने के लिए कभी–कभी 'हम' के साथ 'लोग' या 'सब' शब्द का प्रयोग कर 'हम लोग' या 'हमस ब' बना लिया जाता है।

4. संस्कृत में कारकों के तीनों वचनों में भिन्नता होने के कारण 24 में रूप बनते हैं। यथा– 'राम' शब्द प्रथमा–रामः रामौ रामाः सप्तमी–रामे रामयाः रामेषु आदि। आधुनिक भाषाओं में इसका सीमित प्रयोग भाषा की सरलता का आधार बन गया है। संस्कृत में क्रिया संबंधी काल तथा लकारों में भी बहुत विविधता रहती थी, जबकि आधुनिक भाषाओं में यह भिन्नता अपेक्षाकृत कहीं कम ही कर सरल हो गई है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ : विकास एवं परिचय

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास अपभ्रंश के विभिनन रूपों से हुआ है। इस संदर्भ में अपभ्रंश के सात रूप उल्लेखनीय हैं।

अपभ्रंश		आधुनिक भारतीय आर्य भषाएँ
1. शौरसेनी	:	पश्चिमी हिंदी, गुजराती, राजस्थानी
2. महाराष्टी	:	मराठी
3. मागधी	:	बिहारी, बंगला, उड़ीया, असमी
4. अर्ध मागधी	:	पूर्वी हिंदी
5. पैशाची	:	लहंदा, पंजाबी
6. ब्राचड़	:	सिन्धी
7. खस	:	पहाड़ी

पश्चिमी हिंदी : इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसमें बांगरू (हरियाणवी) खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी तथा बुन्देली पाँच मुख्य बोलियाँ मिलती हैं।

(क) बाँगरू : बाँगरू नाम एक क्षेत्र विशेष, जो ऊँची भूमि से संबंधित हो उसे 'बाँगरू' कहते हैं, के आधार पर हुआ है। इसे जाटँ, देसाड़ी और हरियाणवी नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। आजकल इसे प्रायः हरियाणवी ही कहते हैं। हरियाणा में इसी बोली का प्रयोग होता है। हरियाणा का उद्‌भव भी हिन्दी की इसी बोली हरियाणवी के आधार पर हुआ है। हरियाणा का सीमा–निर्धारण भी इसी बोली हरियाणवी के आधार पर हुआ है। इस बोली के उद्‌भव के विषय में माना जाता है कि खड़ी–बोली पर पंजाबी तथा राजस्थान के प्रभाव के आधार पर यह रूप सामने आया है। इस बोली के लोक–साहित्य का समृद्ध भण्डार है। इस बोली की लिपि देवनागरी है। बाँगरू को निम्नलिखित मुख्य उप वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. बाँगरू : यह केन्द्रीय बोली है। इसका केन्द्र रोहतक है। इस बोली का प्रयोग दिल्ली के निकट तक होता है। इसमें क्रिया 'है' का 'सै' के रूप में प्रयोग होता है। णकार बहुला बोली होने के कारण 'न' ध्वनि प्रायः 'ण' के रूप में प्रयुक्त होती है। श, ष्ज्ञ, स का स्थान 'स' ध्वनि ने ले लिया है।

2. मेवाती : मेव–क्षेत्र विशेष के आधार पर इसका नाम मेवाती पड़ा है। इसका केन्द्र रेवाड़ी है। इस बोली का प्रयोग झज्जर, गुड़गाँव, बावल तथा नूह के कुछ अंश में होता है। इसे ब्रज, राजस्थानी और बाँगरू का मिश्रित रूप मान सकते हैं। इसमें 'ण' और 'ल' का बहुत प्रयोग मिलता है। एकवचन से बहुवचन बनाने के लिए 'ए' के स्थान 'औ' का प्रयोग करते हैं; यथा– छोहरा > छोहरूं।

3. ब्रज : ब्रज क्षेत्र इसके नामकरण का आधार है। पलवल इसका केन्द्र है। इस बोली में ड और ल ध्वनि प्रायः 'र' हो जाती है।

   ल > र काला > कारा

   ड > र कीड़ी > कीरी

यह बोली ओकारान्त बहुला है –

   खाया > खायो

   गया > गयो

4. अहीरवाटी : रेवाड़ी और मेहन्द्रगढ़ का मध्य क्षेत्र इसका केन्द्र स्थल है। नारनौल से कोसली तक और दिल्ली से आस–पास तक इस बोली का प्रयोग होता है। इसे मेवाती, राजस्थानी बाँगरू और बागड़ी का मिश्रित रूप मान सकते हैं। इसमें अकारान्त संज्ञा प्रायः ओकारान्त के रूप में मिलती है; यथा – था > था।

5. बागड़ी : बागड़ी संस्कृति से जुड़ी इस बोली का क्षेत्र भिवानी, हिसार, सिरसा के अतिरिक्त महेन्द्रगढ़ के कुछ भाग तक फैला है। इसकी लोप क्रिया बाँगरू के समान है; यथा अहीर > हीर, उठाना > ठाना, अनाज > नाज बहुवचन बनाने के लिए 'आँ' प्रत्यय का प्रयोग होता है; जैसे– बात > बाताँ।

6. कौरवी : उत्तर प्रदेश के मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर के अतिरिक्त हरियाणा के सोनीपत, पानीपत और करनाल तक इसका क्षेत्र फैला है। इसमें खड़ी बोली की प्रवृत्ति मिलती है; यथा– है, ना (पाना, खाना)। व्यंजनों में द्वित्वीकरण प्रवृत्ति है; यथा–लोप–प्रक्रिया रोचक है– अनार > नार, उतार > तार।

7. अम्बावली : इसका प्रयोग क्षेत्र अम्बाला, यमुनानगर तथा कुरूक्षेत्र तक विस्तृत है। अम्बावली और कौरवी में बहुत कुछ साम्य है। वैसे इस पर पंजाबी, पहाड़ी तथा बाँगरू इसमें महाप्राण ध्वनि बलाघात से अल्पप्राण हो जाती है; यथा– हाथ > हात, साथ > सात आदि लोप प्रक्रिया के समान है।

(ख) खड़ी–बोली : इस बोली का प्रयोग दिल्ली और पश्चिमी उत्तर–प्रदेश के कुछ जिलों में होता है। इसके दो रूप हैं एक साहित्यिक हिंदी, दूसरा उसी क्षेत्र की लोक–बोली। 'खड़ी–बोली' के नाम के संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों का कहना है कि इसके खड़ेपन (खरेपन) अर्थात् शुद्धता के कारण इसे 'खड़ी–बोली' कहते हैं, तो कुछ विद्वानों का कहना है कि खड़ी पाई (आ की मात्रा 'ा') के बहुल प्रयोग (आना, जाना, खाना आदि) के कारण इसे खड़ी–बोली की संज्ञा दी जाती है। इसका क्षेत्र दिल्ली, मेरठ, मुजफ्जरनगर, सहारनपुर, देहरादून, बिजनौर, मुरादाबाद तथा रामपुर के अतिरिक्त इनके समीपस्थ जनपदों के आंशिक भागों तक फैला हुआ है। खड़ी–बोली में साहित्य की दो शैलियाँ हैं– पहली उर्दू प्रभावित, दूसरी तत्सम शब्दावली बहुला परिनिष्ठित शैली। भारत की राजभाषा, राष्ट्र–भाषा में भी इसी रूप को अपनाया गया है। वर्तमान समय में हिंदी की साहित्यिक रचना मुख्यतः इसी में हो रही है।

(ग) ब्रज–भाषा : ब्रज क्षेत्र विशेष में बोली जाने वाली बोली को ब्रज–भाषा कहते हैं। ब्रज–भाषा मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर, मैनपुरी आदि जनपदों में बोली जाती है। हिंदी साहित्य के मध्युग में ब्रजभाषा को साहित्य

रचना का मुख्य आधार बनाया गया इसमें रचना करने वाले मुख्य साहित्यकार हैं– सूरदास, नन्ददास, बिहारी, केशव तथा घनानन्द आदि। यह भाषा माधुर्य गुण सम्पन्नता के लिए प्रसिद्ध है।

(घ) कन्नौजी : यह कन्नौज विशेष क्षेत्र की बोली है, जिसका प्रयोग इटावा, फरूखाबाद, शाहजहाँपुर, हरदोई तथा कानपुर आदि जनपदों में होता है। कन्नौजी में लोक–साहित्य मिलता है, किन्तु साहित्यिक रचना का अभाव है।

(ङ) बुन्देली : बुन्देलखण्ड में बोली जाने के कारण इसे बुन्देली कहते हैं। इसका क्षेत्र झांसी, छतरपुर, ग्वालियर, जालौन, भोपाल, सागर आदि जनपदों तक फैला हुआ है। इसमें साहित्यिक रचना का अभाव है, किन्तु समृद्धशाली लोक साहित्य है।

2. गुजराती : गुजराती का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। यह गुजरात की प्रांत भाषा है। इस क्षेत्र में विदेशियों का आगमन विशेष रूप से होता है इसलिए इस पर विदेशी भाषा का प्रभाव पड़ा है। भाषा के प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचन्द का जन्म बारहवीं शताब्दी में गुजरात में हुआ था। गुजराती के आदि कवि नरसिंह मेहता का आज भी सम्माननीय स्थान है। गुजराती में पर्याप्त साहित्य मिलता है। इसकी लिपि पहले देवनागरी थी, अब देवनागरी से विकसित लिपि गुजराती है।

3. राजस्थानी : यह राजस्थान क्षेत्र या प्रदेश की भाषा है। इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके अंतर्गत चार प्रमुख बोलियाँ आती हैं– मेवाती, जयपुरी, मारवाड़ी और मालवी।

(क) मेवाती : मेव जाति के क्षेत्र मेवाती के नाम पर यह बोली कहलाई है। यह अलवर के अतिरिक्त हरियाणा के गुड़गाँव जनपद के कुछ अंश में बोली जाती है। ब्रज–क्षेत्र से लगे होने के कारण इस पर ब्रजभाषा का प्रभाव है। इसमें समृद्ध लोक–साहित्य मिलता है।

(ख) जयपुरी : यह राजस्थान के पूर्वी भाग जयपुर, कोटा तथा बूंदी आदि क्षेत्रों में बोली जाती है। इस क्षेत्र में ढँढाण कहने के आधार पर इसे ढुँढणी की भी संज्ञा दी जाती है। इसमें लोक–साहित्य मिलता है। इसमें दादू पंथियों का पर्याप्त साहित्य मिलता है।

(ग) मारवाड़ी : यह पश्चिमी राजस्थान के जोधपुर, अजमेर, जैसलमेर तथा बीकानेर आदि जनपदों में बोली जाती है। पुरानी मारवाड़ी को डिंगल कहते हैं। इसमें साहित्य तथा लोक–साहित्य दोनों ही रचा गया है। इसके प्रसिद्ध कवि हैं – नरपति नाल्ह और पृथ्वीराज। मध्यकाल में मीराबाई ने इसी भाषा में रचना की थी।

(घ) मालवी : राजस्थान के दक्षिणी पूर्व में स्थित मालवा क्षेत्र के नाम पर इसे मालवी कहते हैं। इन्दौर, उज्जैन तथा रतलाम आदि जनपद इसके क्षेत्र में आते हैं। इसमें सीमित साहित्य तथा पर्याप्त लोक–साहित्य मिलता है। चन्द्र–सखी इसकी प्रसिद्ध कवयित्री है।

4. मराठी : इसका विकास महाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है। महाराष्ट्र क्षेत्र या प्रदेश के नाम पर ही महाराष्ट्री और नाम पड़ा है विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने के कारण चार विभिन्न क्षेत्रों में इसके चार रूप उभर आए हैं। मराठी का अपना समृद्ध साहित्य है। नामदेव, ज्ञानेश्वर, रामदास तथा तुकाराम आदि इसके प्रमुख कवि हैं। इसमें पर्याप्त संत साहित्य है। इसकी लिपि देवनागरी है।

5. बिहारी : इसका विकास मागधी से हुआ है। बिहारी क्षेत्र या प्रदेश में विकसित होने के कारण इसका नाम बिहारी रखा गया है। यह हिन्दी भाषा का ही रूप है। इसके अन्तर्गत भोजपुरी, मैथिली, मगही तीन प्रमुख बोलियाँ आती हैं।

(क) भोजपुरी : जनपदीय क्षेत्र भोजपूर इसका मुख्य केन्द्र होने के कारण इसका यह नाम पड़ा है। यह बिहार तथा उत्तर–प्रदेश के सीमावर्ती जिलों भोजपुर, राँची, सारन, चम्पार, मिर्जापुर, जौनपुर, बलिया,

गोरखपुर, बस्ती आदि में बोली जाती हैं। इसमें सीमित साहित्य, किन्तु समृद्ध लोकसाहित्य मिलता है।

(ख) मैथिली : जनपदीय क्षेत्र की भाषा होने के आधार पर इसे मैथिली नाम दिया गया है। इसके क्षेत्र में दरभंगा, सहर और मुजफ्फरपुर तथा भागलपुर जनपद आते हैं। इसमें पर्याप्त साहित्य मिलता है। इसे सम्पन्न भाषा मान सकते हैं। इस भाषा को लोक–साहित्य भी अपने सरस रूप के लिए प्रसिद्ध है। मैथिली कोकिल विद्यापति ने इसी भाषा में अपनी अधिकांश कृतियों का सृजन किया है।

(ग) मगही : ''मागधी'' से विकसित होकर मगही शब्द बना है। 'मागध' क्षेत्र की भाषा होने के आधार पर इसे मागधी या मगाही नाम दिया गया है। गया जनपद के अतिरिक्त पटना, भागलपुर, हजारीबाग तथा मुंगेर आदि जनपदांशों में भी यही बोली जाती है।

5. बंगला : इसका विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। बंगला इसका क्षेत्र है। गाँव तथा नगर की बंगला में भिन्नता है। इसी प्रकार पूर्वी तथा पश्चिमी क्षेत्र की बंगला में भी भिन्नता है। पूर्वी बंगला का मुख्य केन्द्र ढाका है, जो अब बंगलादेश में है। हुगली नदी के निकट क्षेत्र की नगरीय बंगला ही साहित्यक भाषा बन गई है। परंपरागत तत्सम शब्दों की संख्या सर्वाधिक रूप में बंगला में ही मिलती है। इसकी अनेक विशेषताओं में ''अ'' तथा ''स'' का ''श'' उच्चारण प्रसिद्ध है। बंगला साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न भाषा है। रविन्द्रनाथ ठाकुर, शरत्चन्द्र, बंकिमचन्द्र, चण्डीदास तथा विजयगुप्त आदि इस भाषा के प्रमुख साहित्यकार हैं। प्रसिद्ध भाषा–शास्त्री 'बंगाला' का उद्भव एवं विकास के लेखक डॉ0 सुनीतिकुमार चटर्जी का नाम भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसकी लिपि बंगला है, जो पुरानी नागरी से विकसित हुई है। देवनागरी और बंगला लिपि में पर्याप्त साम्य है।

7. उड़िया : उड़िया का विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। उड़िसा प्रदेश की भाषा होने के कारण इसे उड़िया कहा जाता है। उड़ीसा को 'उत्काल' नाम से संबोधित किया जाता था, इसलिए इसे 'उत्कली' भी कहते हैं। उड़िया का शुद्ध रूप ओड़िया है इसलिए इसे ''ओड़ी'' भी कहते हैं। बंगला तथा उड़िया भाषा में पर्याप्त समानता है। इस भाषा पर मराठी तथा तेलगू का काफी प्रभाव है, क्योंकि यह क्षेत्र एक लम्बे समय तक ऐसे भाषा–भाषी राज्याओं के शासन में रहा है। इसमें परम्परागत तत्सम शब्द पर्याप्त रूप से कृष्ण भक्तिपरक रचनाएँ मिलती हैं। इसकी लिपि उड़िया है, पुरानी नागरी से विकसित हुई है।

8. असमी : मागधी अपभ्रंश से विकसित भाषाओं में असमी एक भाषा है। असमी, आसामी, असमीया, असामी आदि नामों से जानी जाने वाली यह भाषा आसाम या असम प्रान्त की भाषा है। इसमें तथा बंगला में बहुत कुछ साम्य है। यह साहित्य सम्पन्न भाषा है। इसके प्राचीन साहित्य में ऐतिहासिक ग्रंथों का विशेष महत्व है। इसके प्रसिद्ध साहित्यकार हैं – शंकरदेव, महादेव तथा सरस्वती आदि। इसकी लिपि बंगला है, किन्तु इसमें कुछ एक ध्वनि चिह्न सुधार लिए गए हैं।

9. पूर्वी–हिंदी : पूर्वी हिंदी का विकास अर्धमागधी अपभ्रंश से हुआ है। पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र के पूर्व में होने से इसी पूर्वी हिन्दी का नाम दिया गया है। इसकी कुछ विशेषताएँ पश्चिमी हिन्दी से मिलती हैं, जो कुछ बिहारी वर्ग की भाषाओं से। इसे तीन बोलियों–अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ में विभक्त करते हैं।

(क) अवधी : यह पूर्वी हिन्दी की प्रमुख बोली है। अवध (अयोधा) क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे अवधी कहते हैं। प्राचीन काल में अवध को ''कोशल'' भी कहा जाता था, इसलिए इसे कोसली भी कहते हैं। विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होने के कारण इसे तीन उपवर्गों में विभक्त करते हैं। इसके क्षेत्र इस प्रकार हैं –

1. पूर्वी अवधी : फैजाबाद, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, इलाहाबाद, मिर्जापुर गोंडा।

2. केन्द्रीय अवधी : रायबरेली, बाराबंकी।

3. पश्चिमी अवधि : लखनऊ, सीतापुर, उन्नाव, फतेहपुर, खीरीलखीमपुर। अवधी में साहित्य तथा लोक–साहित्य की परम समृ0 परम्परा है। ठेठ तथा साहित्यिक अवधी में उन्नत साहित्य की रचना हुई है। मुल्लादाउद, कुतुबन, मलिक मुहम्मद जायसी, तुलसीदास आदि अवधी के प्रमुख कवि हैं।

(ख) बघेली : बघेल खण्ड में बोली जाने के कारण इसे बघेली नाम दिया गया है। इसे बघेलखण्डी भी कहते हैं। इसका केन्द्र रीवाँ है। रीवाँ के आसपास शहडोल, सतना आदि में भी इसका प्रयोग होता है। इसमें लोक–साहित्य मिलता है।

(ग) छत्तीसगढ़ी : छत्तीसगढ़ी के नाम पर इसे छत्तीसगढ़ी कहते हैं। रायपुर, विलासपुर, खैरागढ़ तथा कांके आदि तक इसका क्षेत्र माना गया है। इसमें पर्याप्त लोक–साहित्य मिलता है।

10. लहँदा : इसका विकास पैशाची अपभ्रंश से हुआ है। लहँदा का अर्थ है पश्चिमी। अब वह पश्चिमी पंजाब जो पाकिस्तान है, की भाषा है। यह पश्चिमी, पंजाबी, जटकी तथा 'हिन्दकी' के नाम से भी जानी जाती है। इस पर पंजाबी तथा सिन्धी भाषाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इसकी कई बोलियाँ विकसित हो गई हैं। इसकी लिपि लंडा है, किन्तु आजकल इसे गुरूमुखी या फारसी में लिखते हैं। इसमें उन्नत या विकसित साहित्य का अभाव है।

11. पंजाबी : पैशाची अपभ्रंश से इसका विकास हुआ है। यह पंजाब प्रांत की भाषा है। पंजाब क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसका नाम पंजाबी हुआ है। यह सिक्ख–साहित्य की मुख्य भाषा हैं इस पर दरद का प्रभाव है। इस भाषा का केन्द्र अमृतसर है। पंजाबी भाषा की विभिन्न बोलियों में अधिक अंतर नहीं है। इसमें समृ0 लोक–साहित्य है। वर्तमान समय में इससे संबंधित साहित्यकार साहित्यिक रचना में गतिशील हैं। उसकी लिपि गुरूमुखी है।

12. सिन्धी : इसका विकास ब्राचड़ या ब्राचट अपभ्रंश से हुआ है। सिन्ध क्षेत्र की भाषा होने के कारण इसे सिन्धी कहा गया है। सिन्ध क्षेत्र में सिन्धु नदी के तटीय भागों में यह भाषा बोली जाती है। इसकी कई बोलियाँ हैं, जिनमें बिचौली मुख्य है। इसका साहित्य अत्यंत सीमित है। सिन्धी भाषा की लिपि लंडा है, किन्तु आजकल इसके लेखन में फारसी लिपि का भी प्रयोग किया जाता है।

13. पहाड़ी : इसका विकास 'खस' अपभ्रंश से हुआ है। इसका क्षेत्र हिमालय के निकटवर्ती भाग नेपाल से लेकर शिमला तक फैला है। कई बोलियों वाली इस भाषा को तीन उपवर्गों में विभक्त करते हैं –

(क) पश्चिमी पहाड़ी : इसमें शिमला के आस–पास चम्बाली, कुल्लई आदि बोलियाँ आती हैं।

(ख) मध्य पहाड़ी : इसमें कुमायूं तथा गढ़वाल का भाग आता है। नैनीताल तथा अल्मोड़ा में बोली जाने वाली कुमायूनी तथा गढ़वाल, मंसूरी में बोली जाने वाली गढ़वाली बोलियाँ मुख्य हैं।

(ग) पूर्वी पहाड़ी : काठमाण्डू तथा नेपाल की घाटी में यह भाषा बोली जाती है। पहाड़ी बोलियों का समृद्ध लोक–साहित्य है। इसकी लिपि मुख्यतः देवनागरी है।

(घ) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण : विश्व के समस्त भाषा–कुलों में भारतीय भाषाकुल का और इसमें भारतीय आर्य भाषाओं का विशेष महत्व है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा से मध्ययुगीन भारतीय, आर्य भाषाओं का उद्‌भव और उससे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का विकास हुआ है। वर्तमान समय की आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में पर्याप्त विकास हुआ है। इसकी विभिन्न शाखाओं में भरपूर साहित्य रचना हो रही है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर इस परिवार की विभिन्न भाषाओं का वगीकरण किया गया है।

वर्गीकरण प्रस्तुत करने वाले मुख्य भाषा–वैज्ञानिक हैं – हार्नलें, बेबर, ग्रियर्सन, डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी, डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा, श्री सीताराम चतुर्वेदी, डॉ0 भोलानाथ तिवारी आदि।

1. हार्नले द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण : भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण के संबंध में प्रथम नाम हार्नले का आता है। उन्होंने आर्य के विषय में एक सैद्धांतिक तथ्य साने रखा है कि आर्य बाहर से भारत में दो बार आए हैं। इनके भारत प्रथम आगमन का मार्ग सिन्धु पार कर पंजाब से रहा है। दूसरी बार इनका आगमन कश्मीर की ओर से हुआ है। दूसरी बार आर्यों के आगमन पर पूर्वकाल में आए आर्य देश के कोने–कोने में फैल गए। दूसरी बार आए आर्य देश के मध्य भाग में बस गए। इस प्रकार हार्नले ने आर्यों के बहिरंग तथा अंतरंग वर्गों के आधार पर ही उनकी भाषाओं को भी वर्गीकृत किया है। इस आधार पर हार्नले ने अंतरंग और बहिरंग दो वर्ग बनाए।

   हार्नले ने ''Comparative Grammer of the Gaudian Languages" में एक भिन्न वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने विभिन्न दिशाओं के आधार पर भाषा–सीमा बनाने का प्रयत्न किया है। ये भाषा वर्ग हैं –

   1. पूर्वी गौडियन : पूर्वी हिन्दी (बिहारी सहित), बंगला, उड़ीसा, असमी।
   2. पश्चिमी गौडियन : पश्चिमी हिन्दी (राजस्थानी सहित), गुजराती, सिन्धी, पंजाबी।
   3. उत्तरी गौडियन : पहाड़ी (गढ़वाली, नेपाली आदि)
   4. दक्षिणी गौडियन : मराठी।

   इस प्रकार हार्नले द्वारा प्रस्तुत किया गया आधुनिक भारतीय भाषाओं का आदि वर्गीकरण भले ही विस्तृत और पूर्ण वैज्ञानिक नहीं सिद्ध हो सका है, किन्तु इसका अपना विशेष महत्व है; इस वर्गीकरण की मुख्य विशेषता यह है कि परिवर्ती वर्गीकरण अल्पाधिक रूप में इस पर आधारित है।

2. ग्रियर्सन : द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण : जार्ज इब्राहिम ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का समुचित सर्वेक्षण करके उनकी विशेषताओं के आधार पर वर्गीकरण करने का यत्न किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत किए गए दो वर्गीकरण इस प्रकार हैं –

(क) प्रथम वर्गीकरण : ग्रियर्सन ने हार्नल के बाह्य और आन्तरिक सिद्धांत वर्गीकरण को आंशिक आधार बनाकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण किया है। उन्होंने इस वर्गीकरण में समस्त भाषाओं को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया है। उनके वर्गीकरण को संक्षिप्त रूप में इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं।

1. बाहरी उपशाखा : (क) पश्चिमोत्तर वर्ग : लहँदा, सिन्धी।
   (ख) दक्षिणी वर्ग : मराठी।
   (ग) पूर्वी वर्ग : उड़िया, बंगला, असमी, बिहारी।
2. मध्यवर्ती उपशाखा मध्यवर्ती वर्ग : पूर्वी हिन्दी।
3. भीतरी उपशाखा : (क) केन्द्रीय वर्ग : पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी (भीली, खानदेशी)
   (ख) पहाड़ी वर्ग : नेपाली (पूर्वी पहाड़ी), मध्य पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी।

ग्रियर्सन के मतानुसार विभिन्न उपशाखाओं में विभक्त भाषाओं की ध्वनियों, शब्दों तथा उनके व्याकरणिक रूपों में पर्याप्त भिन्नता है। उन्हीं आधारों पर उन्होंने विभिन्न भाषाओं को उपशाखाओं में विभक्त किया है। डॉ0 सुनीति

कुमार चटर्जी और डॉ0 भोलानाथ तिवारी ने इस वर्गीकरण की विभिन्न दृष्टियों से आलोचना की है। इस वर्गीकरण के आधार और विशेषताओं पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण से इस प्रकार विचार कर सकते हैं।

(क) ध्वन्यात्मक विशेषताएँ – ग्रियर्सन ने बाहरी उपशाखा की कुछ ऐसी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ, रेखांकित की हैं, जो भीतरी उपशाखा में नहीं हैं; यथा –

1. उनके अनुसार बाहरी उपशाखा की भाषाओं में इ, उ तथा ए स्वरांत शब्दों की उक्त ध्वनियों का लोप नहीं होता है। यदि भीतरी उपशाखा की भाषाओं की ऐसी शब्दान्त ध्वनियों के विषय में देखें तो पाएंगे कि उनका लोप वहाँ भी नहीं होता; यथा–पति, प्शु, मिले आदि।
2. इस शाखा में इ ध्वनि ए और उ ध्वनियों में परिवर्तित हो जाती हैं। ऐसा ध्वनि–परिवर्तन बाहरी शाखा की भाषाओं में ही नहीं, भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिलता है; यथा– इ > ए : मिलना > मेल, तिल > तेल, उ > ओ : सुखाना > सोखना, मुग्ध > मोह, तुही > तोही।
3. उक्त शाखाओं की भाषाओं की ''इ'' तथा ''उ'' ध्वनि आपस में एक–दूसरे के प्रयोग स्थान पर युक्त होती हैं। भीतरी शाखा की भाषाओं में भी यदा–करा ऐसे योग मिल जाते हैं; यथा– इ–उ : बिन्दु, बुन्द।
4. ग्रियर्सन के अनुसार ''ड'' और ''ल'' के स्थान पर 'र' का योग होता है। ऐसी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ भीतरी शाखा की भाषाओं में भी यदा–कदा मिल जाती हैं; यथा– ड > र : किवाड़ > किवार, पड़ गए > पर गए, सड़क > सरक ल > र : बल > बर, बिजली > बिजुरी, तले > तरे यह प्रवृत्ति अवधी तथा ब्रज में पर्याप्त रूप से मिलने के साथ खड़ी बोली में भी अल्पाधिक रूप से मिल जाती है।
5. उनकी मान्यता है कि बाहरी शाखा की भाषाओं में द तथा ड ध्वनियाँ आपस में एक–दूसरे के स्थान पर युक्त होती हैं। ऐसी प्रवृत्ति तो भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिलती है; यथा– द > ड : दशन > डसना, दंड > डंड, ड्योढी > देहली।
6. बाहरी शाखाओं की भाषाओं में 'म्ब' से ''म'' ध्वनि का विकास माना गया है, साथ ही यह भी संकेत किया गया है कि भीतरी शाखा में 'म्ब' का 'ब' रूप होता है। दोनों उपशाखाओं के शब्दों की ध्वनियों के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि इसके विपरीत वृत्ति भी मिलती है। पश्चिमी तथा पूर्वी हिंदी में निम्ब से नीम, निबोली, जम्बुक से जामुन शब्द रूप हो जाते हैं, तो बंगला में निम्बुक से लेबू रूप हो जाता है।
7. उनके अनुसार बाहरी शाखा की भाषाओं में 'स' ध्वनि श, ख, या ह के रूप में मिलती है। यदि बाहरी शाखा की पूर्वी वर्ग की बंगला तथा दक्षिणी वर्ग की मराठी भाषाओं में देखें तो यह ध्वनि ''श'' के रूप में प्रयुक्त होती है। बंगला की पूर्वी बोली तथा असमी में यह निर्बल ध्वनि 'ख' के रूप में युक्त होी है। पश्चिमोत्तर वर्ग लहँदा तथा सिन्धी में यही ध्वनि 'ह' के रूप में मिलती है। ग्रियर्सन द्वारा संकेत की गई उपशाखा की यह वृत्ति भीतरी उपशाखा में भी मिलती है, यथा–द्वादश > बारह, केसरी > केहरी, पंच–सप्तति > पचहतर, कोस > कोह।
8. ग्रियर्सन के अनुसार बाहरी शाखा की भाषाओं की महाप्राण ध्वनियाँ अल्पप्राण हो जाती हैं। यदि भीतरी शाखाओं की भाषाओं के विषय में चिन्तन करें तो यह परिवर्तन इसमें भी मिलता है; यथा– भंगिनी > बहन या बहिन, ईठा (प्राकृत) (इष्टक) > ईंट।
9. उनके अनुसार संयुक्त व्यंजन के मध्य स्थिति अर्थ–व्यंजन का लोप हो जाता है। क्षतिपूरक दीर्घीकरण नियमानुसार पूर्व वर्ण का रूप दीर्घ हो जाता है। भीतरी शाखा की भाषाओं में भी ऐसे ध्वनि–परिवर्तन मिल

जाते हैं; यथा– कर्म > काम, सप्त > सात, हस्त > हाथ, चर्म > चाम आदि।

10. इसमें अंतरस्थ 'र' का लोप हो जाता है। यह वृत्ति भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिलती है; यथा– ओर > औ, पर > पै।
11. इसमें ही ''ए'' का ''ऐ'' और 'आ' का 'औ' होने की बाबत कही गई है, भीतरी शाखा की भाषाओं के उच्चारण में यदा–कदा ऐसे परिवर्तन मिल जाते हैं; यथा– सेमैस्टर > सैमेस्टर।
12. बाहरी शाखा की भाषाओं में 'द' और 'घ' के 'ज' और 'झ' होने की बात कही गई है। ये परिवर्तन भीतरी शाखा की भाषाओं में भी मिल जाते हैं।

(ख) व्याकरणिक विशेषताएँ

1. ग्रियर्सन ने 'ई' त्यय के योग के आधार पर बाहरी शाखा की भाषाओं को अलग किया है, किंतु भीतरी शाखा की भाषाओं में ऐसी वृति संज्ञा, क्रिया, विशेषण आदि शब्दों के स्त्रीलिंग बनाने में मिलती है; यथा –

   संज्ञा : लड़का > लड़की, मामा > मामी, दादा > दादी।

   विशेषण : अच्छा > अच्छी, गन्दा > गन्दी, पीला > पीली।

   क्रिया : जाता > जाती, रोता > रोती, गाता है > गाती है। क्रिया : जाता–जाती रोता, गाता है –गाती है।

2. उन्होंने बाहरी शाखा की भाषाओं के विशेषण शब्दों में 'ला' तथा प्रयोग की बात कही है, जो भीतरी भाषाओं में मिलती है; यथा –

   पुल्लिंग विशेषण : गठीली, रंगीली, खर्चीला, कटीला।

   स्त्रीलिंग विशेषण : गठीली, रंगीली, खर्चीली, कँटीली।

3. ग्रियर्सन के अनुसार संस्कृत संयोगात्मक भाषा थी। उसके पश्चात की भाषाएँ क्रमशः वियोगात्मक होती गई हैं। बाहरी शाखा की भाषाओं में आगे के विकास की बात कही ई अर्थात् उसमें पुनः संयोगात्मक रूप विकसित हो गए हैं। 'राम की किताब' का बंगला रूपान्तरा 'रामेर बाई होता है। इसके विपरीत भीतरी शाखा को भाषाओं के कारण रूपों के संयोगात्मक प्रयोग देख सकते हैं; यथा– अपने काम से मतलब है। तुमसे भी कहूँ। उनकी बात है।
4. क्रिया शब्दों तथा धातु रूपों में समानता की बात कही गई है। यह तथ्य न तो बाहरी शाखा की भाषाओं में पूर्णतः मिलता है और न ही भीतरी शाखा की भाषओं में दोनों ही शाखाओं की भाषाओं में मिलने वाली ऐसी प्रवृत्ति को भेदक आधार रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है।
5. भूतकालिक क्रिया का रूप कर्त्ता के अनुरूप प्रयुक्त होता है। यह प्रवृत्ति बाहरी शाखा की भाषाओं के अतिरिक्त पूर्वी हिंदी में भी मिलती है; यथा –

   हम इमलि खायेन – (मैंने इमली खाई)

   हम आम खायेन – (मैंने आम खाया)

   बाहरी शाखा की भाषाओं में यह प्रवृत्ति अकर्मक क्रिया के सन्दर्भ में ही मिलती है।

6. ग्रियर्सन के अनुसार भूतकालिक क्रिया के साथ आने वाला सर्वनाम क्रिया के साथ अन्तर्भूत होता है। बाहरी

शाखा की सभी भाषाओं में यह प्रक्रिया नहीं मिलती है। इस प्रकार यह भी स्पष्ट भेदक आधार नहीं है।

7. बाहरी शाखा की भाषाओं के सभी वर्गों के शब्दों को सप्रत्यय माना है। यदि भीतरी शाखा की भाषाओं के शब्दों पर विचार करें तो ऐसी ही प्रवृत्ति इसमें है; यथा– मैं (मैंने), तै (तूने) बालहि (बालक)।

(ग) शब्द विशेषताएँ : ग्रियर्सन के अनुसार बाहरी शाखा की सभी भाषाओं के शब्दों में पर्याप्त समानता है। यदि तुलनात्मक दृष्टिकोण से भीतरी तथा बाहरी शाखाओं की विभिन्न भाषाओं का अध्ययन करें, तो पाएंगे कि बंगला–लहँदा या बंगला–मराठी की अपेक्षा कहीं अधिक समता बंगला तथा हिन्दी में मिलती है। बिहारी तो वास्तव में हिन्दी का एक रूप है इस प्रकार बाहरी तथा भीतरी शाखाओं की भाषाओं के विभन्न शब्द वर्गों और उनकी रचना में पर्याप्त समानता होने से वर्गीकरण का यह आधार भी वैज्ञानिक नहीं सिद्ध होता है।

(घ) वंशानुगत विशेषताएँ : आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बाहरी तथा भीतरी उपशाखा आधारित वर्गीकरण को पुष्ट आधार देने के लिए परिवार को दो उपवर्गों में विभक्त किया गया है। इस मन्तव्य के अनुसार बाहरी क्षेत्र के आर्य एक जाति के थे और भीतरी आर्य दूसरी जाति के थे। इस प्रकार भिन्न जाति के होने के कारण उनकी भाषा भी भिन्न बताई गई है। इस विचार के अनुसार बंगला, सिन्ध तथा महाराष्ट्र क्षेत्र के आर्य उत्तर–प्रदेश, गुजरात तथा राजस्थान आदि क्षेत्रों के आर्य दूसरी जाति के थे, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह मन्तव्य गलत सिद्ध होता है। इतिहास के अनुसार आर्य ही एक परिवार के थे।

द्वितीय वर्गीकरण : ग्रियर्सन ने बाद में हिन्दी को विशेष महत्व देते हुए एक नए ढ़ंग का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है इस वर्गीकरण में विभिन्न भाषाओं की समान विशेषताओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। उनके इस वर्गीकरण को इस प्रकार रेखांकित कर सकते हैं।

(क) मध्य देशीय भाषाएँ – पश्चिमी हिन्दी

(ख) अन्तर्वत भाषाएँ – पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी (पश्चिमी हिन्दी से अधिक समता रखने वाली भाषाएँ); पूर्वी हिन्दी (बाहरी भाषाओं से समता रखने वाली भाषाएँ)।

(ग) बाहरी भाषाएँ – पश्चिमोत्तरी भाषाएँ– लहँदा, सिन्धी, दक्षिणी भाषाएँ– मराठी, पूर्वी भाषाएँ– बिहारी, उड़िया, बंगला, असमी।

डॉ0 ग्रियर्सन के द्वारा किए गए दोनों ही वर्गीकरण पूर्ण वैज्ञानिक कोटि में नहीं आते हैं, क्योंकि प्रथम वर्गीकरण की दोनों उपशाखाओं की ध्वन्यात्मक, व्याकरणिक तथा शब्दगत विशेषताओं में स्पष्ट भेदक रेखा खींचना संभव नहीं है। आर्यों को बाहरी तथा भीतरी दो जातियों में विभक्त करना इतिहास के तथ्यों के विपरीत है। इनके द्वारा प्रस्तुत द्वितीय वर्गीकरण अधिक उपयोगी तथा अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक है। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के अब तक हुए वर्गीकरण में ग्रियर्सन का वर्गीकरण निश्चय ही महत्वपूर्ण है। इस वर्गीकरण के माध्यम से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की विभिन्न भाषाई विशेषताओं के अध्ययन का अवसर मिल जाता है।

(ङ) डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण : डॉ0 चटर्जी ने ओरिजन एण्ड डेवलपमेण्ट ऑफ बंगाली लैंगवेज (ODBL) में डॉ0 ग्रियर्सन द्वारा किए गए आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बाहरी और भीतरी वर्गीकरण के ध्वन्यात्मक, व्याकरणिक तथा शब्दगत आधारों की आलोचना की है। इस प्रकार उदाहरण पुष्ट आलोचना करने से जहाँ ग्रियर्सन के वर्गीकरण की वैज्ञानिकता तथा उसकी सीमा स्पष्ट होती है, वहीं नए वर्गीकरण का आधार बनता है। इसी पुस्तक में उन्होंने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की आपसी समीपता तथा पारस्परिक विशेषताओं को महत्व देते हुए उनको वर्गीकृत किया है। इस वर्गीकरण में उन्होंने वैदिक काल से वर्तमान समय तक मध्यक्षेत्र की

भाषा की महत्ता–संकेत करते हुए उसी भाषा को वर्गीकरण का आधार बनाया है। वर्तमान समय में पश्चिमी हिन्दी उसी महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में सामने आती है। इस प्रकार सर्वप्रथम मध्य प्रदेश भाषा वर्ग बनाकर उसमें पश्चिमी हिन्दी रखी गई। पश्चिमी हिन्दी के पश्चिम क्षेत्र की भाषाओं–गुजराती तथा राजस्थानी को समता के कारण ये एक साथ पश्चिमी भाषा–वर्ग में रखी गई हैं। समता की दृष्टि से सिन्धी तथा लहँदा के साथ ही पंजाबी भाषा भी एक वर्ग में रखी गई है। इस वर्गीकरण में भी मराठी एक अलग दक्षिणी वर्ग में रखी गई है। पूर्वी वर्ग में आने वाली बिहारी, बंगला, असमी तथा उड़िया के साथ ही पूर्वी हिन्दी रखी गई है; यथा –

(क) उत्तरी (उदीच्य) वर्ग –

1. सिन्धी
2. लहँदा।
3. पंजाबी।

(ख) पश्चिमी (प्रतीच्य) वर्ग –

4. गुजराती।
5. राजस्थानी।

(ग) मध्य (मध्यदेशीय) वर्ग –

6. पश्चिमी हिन्दी।

(घ) पूर्वी (प्राच्य) वर्ग –

7. पूर्वी हिन्दी
8. बिहारी।
9. बंगला।
10. असमी।
11. उड़िया।

(ङ) दक्षिणी (दक्षिणात्य) वर्ग –

12. मराठी।

इस वर्गीकरण की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

(क) डॉ0 ग्रियर्सन, डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा आदि ने भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण में 'पहाड़ी' भाषा को महत्व देते हुए मध्य शाखा के उपवर्ग तथा उत्तरी भाषा के रूप में स्थान दिया है। डॉ0 चटर्जी के वर्गीकरण में 'पहाड़ी' का नाम न आने से उनके द्वारा उस भाषा को महत्व न देने की बात स्पष्ट होती है। उन्होंने पहाड़ी को दरद तथा राजस्थानी भाषा को सम्मिलित रूप माना है।

(ख) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण के संदर्भ में ग्रियर्सन तथा कुछ अन्य भाषा वैज्ञानिकों ने भीली तथा खानदेशी को स्वतंत्र भाषा के रूप में स्वीकार कर एक वर्ग में स्थान दिए हैं। डॉ0 चटर्जी ने इन दोनों

ही भाषाओं को स्वतंत्र रूप में स्वीकार नहीं किया है। इस कारण इन्हें वर्गीकरण में स्थान नहीं मिल सका है।

(ग) यह वर्गीकरण विभिन्न भाषाओं की समान विशेषताओं के आधार पर किया गया है, इसलिए सुविधाजनक है। इस वर्गीकरण के विषय में डॉ0 सरयू प्रसाद अग्रवाल ने भाषा विज्ञान और हिंदी (द्वितीय संस्करण) के पृष्ट 138 पर अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है –''डॉ0 अग्रवाल ने इस वर्गीकरण की सरलता को स्पष्ट करते हुए आगे कहा है– 'सुविधा की दृष्टि से श्रेयस्कर है।'

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के वर्गीकरण में डॉ0 चटर्जी के वर्गीकरण का अपना महत्व है।